International Journal of History 2023; 5(1): 174-177

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
www.historyjournal.net
IJH 2023; 5(1): 174-177
Received: 15-03-2023
Accepted: 19-04-2023

शशिकान्त कुमार
शोधार्थी, यू० जी० सी० नेट (जे० आर० एफ०, एस० आर० एफ०) विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
शशिकान्त कुमार
शोधार्थी, यू० जी० सी० नेट (जे० आर० एफ०, एस० आर० एफ०) विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत

ब्रिटिश भू–राजस्व नीति का बिहार के जमींदारों पर प्रभावः एक अध्ययन

शशिकान्त कुमार

सारांश
ब्रिटिश भू–राजस्व नीति का बिहार के जमींदारों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश भू–राजस्व नीति के तहत जमींदारों का जमीन पर पैतृक स्वामित्व का अधिकार मिल गया जिससे उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति मजबूत हुई। राजस्व वसूली का एक निश्चित अंश मिलने से उनकी आय नियमित हो गई। इसके अतिरिक्त राजस्व वसूली की कोई सीमा न होने के कारण उत्पादन में वृद्धि होने पर ये वर्ग विशेष रूप से लाभान्वित हुए। स्थायी बन्दोवस्त के परिणामस्वरूप जमींदारों के समक्ष भी अनेक विपरित परिणाम सामने आये। भू–राजस्व की मात्रा अधिक होने के कारण अनेक जमींदार समय पर भू–राजस्व जमा नहीं कर पाये। फलतः बड़ी संख्या में जमींदारों को अपने अधिकार खोने पड़े। 'सूर्यास्त कानून' का पालन करने के उद्देश्य से जमींदार कृषकों से जबरदस्ती वसूली किये, जिससे कृषक–जमींदारों के बीच की मानवीय भावनाएँ भी आहत हुई।

कुटशब्दः जमींदारी प्रथा, जमींदार, मध्यस्थ, सरकार समर्थक, कृषक, शोषक

प्रस्तावना
कार्नवालिस ने 1793 में भू–राजस्व में वृद्धि के लिए स्थायी बन्दोवस्त की व्यवस्था की जिसके तहत पूरे ब्रिटिश भारत को जमींदारी, रैयतवारी एवं महालवारी बन्दोवस्त प्रणाली में बांटा गया। इसने 22 मार्च 1793 ई० में भू–राजस्व की एक स्थायी बन्दोवस्त व्यवस्था को लागू किया। इसे बंगाल, बिहार, उड़ीसा, पूर्वी उत्तरप्रदेश एवं दक्षिण भारत के नदर्न सरकार में लागू किया गया। इसे ब्रिटिश भारत के 19 प्रतिशत क्षेत्र में लागू की गयी।
स्थायी बन्दोवस्त ने एक ऐसे जमींदार वर्ग को जन्म दिया जो कि भारतीय सामाजिक रीति के अनुकूल नहीं था। इसने साम्राज्यवाद को परिपक्व करने में मदद की और शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध हुई क्रांतियों को दबाने में भी सहायता दी।[1]
जमींदारी प्रथा के अन्तर्गत सरकार तथा कृषक का सम्बन्ध प्रत्यक्ष नहीं होता अपितु कृषक तथा सरकार के बीच एक मध्यस्थ वर्ग होता है जो जमींदार कहलाता है। इस प्रथा के अनुसार जमींदार भूमि का स्वामी होता है तथा भूमि सम्बन्धी सभी अधिकार उसी के हाथ में होते हैं। प्रारंभ में जमींदारों की हैसियत मालगुजारी एकत्रित करने वालों के समान थी। ये लोग मालगुजारी वसूल किया करते थे और इन्हें अपने सेवाओं के बदले में कमीशन मिलता था। मुगल साम्राज्य की पतनावस्था में इन्होंने अपने–अपने क्षेत्रों में अपनी–अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर लिया। यह प्रथा प्रमुखतः बंगाल, बिहार, उड़ीसा, तमिलनाडु एवं आंध्रप्रदेश में प्रचलित थी। इनके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, पंजाब और मध्यप्रदेश में भी जमींदारी व्यवस्था प्रचलित थी। जमींदारों की नियुक्ति कास्तकारों से लगान इकट्ठा करके प्रारम्भ में कम्पनी सरकार को तथा 1858 के पश्चात् ब्रिटिश सरकार को देने के उद्देश्य से की गई थी। जमींदारों को उनकी सेवाओं के बदले कुल मालगुजारी का 1/10 भाग मिलता था। स्थायी तथा अस्थायी बन्दोवस्त में कुल मिलाकर 1947–1948 में कुल क्षेत्र का 48 प्रतिशत अथवा 25 करोड़ एकड़ भूमि थी।[2]

चार्ट में

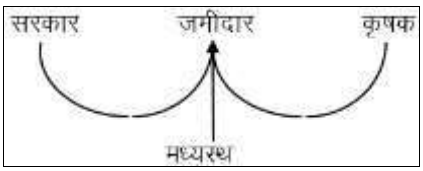

जमींदारी पद्धति के अनुसार जमींदार को (जो प्रायः भूमि कर संग्रहकर्ता ही होता था) भूमि का स्वामी स्वीकार कर लिया जाता था। वह भूमि को बेच, रेहन अथवा दान में दे सकता था। राज्य भूमि कर देने के लिए केवल जमींदार को ही उत्तरदायी समझता था तथा उसके कर न देने पर उसकी भूमि जब्त की जा सकत थी।[3] जमींदार किसानों से जितना लगान वसूलते थे उसका थोड़ा ही भाग जो कि निश्चित था सरकार को देते थे। निश्चित लगान स्थापित करने की वजह से अतिरिक्त आय सरकार के कोष में पहुंचने के स्थान पर जमींदारों के पास पहुंचने लगी।[4]

अंग्रेज प्रशासकों ने जमींदार वर्ग को साम्राज्य सेवाओं के परिणाम स्वरूप आर्थिक शोषण का भागीदार बना लिया। यूरोप में जमींदारों द्वारा किए गए निवेश व भूमि–सुधार से कृषि–उत्पादन में क्रांतिकारी परिवर्त्तन किए गए, भारत में जमींदार वर्ग अपनी इस भूमिका को भूलकर केवल अपने स्वार्थों की ही पूर्ति करने में लगा रहा। भारतीय जमींदार वर्ग इस प्रकार निकम्मा, विलासी व क्रूर बनता गया और दूसरे के खून पर पलने वाली एक जोंक बन गया। अपने स्वार्थ हेतु यह वर्ग प्रायः ब्रिटिश सरकार का शुभचिंतक रहा जिसने प्रत्येक ब्रिटिश साम्राज्यवाद – विरोधी – संघर्ष (1857 का सिपाही विद्रोह, कृषकों के विद्रोह) को दबाने में सरकार का साथ दिया।[5]

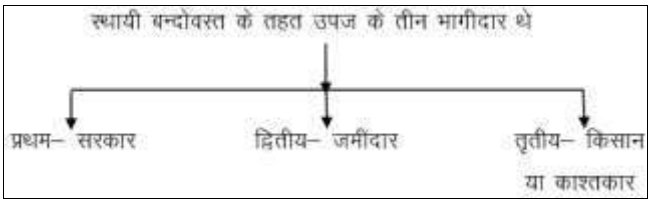

इस बन्दोवस्त के द्वारा निम्नलिखित व्यवस्थाएँ लागू की गयीं–

1. जमींदारों को भूमि का स्वामी बना दिया गया। भूमि पर उनका पैतृक अधिकार हो गया और उस समय तक उन्हें उनकी भूमि से पृथक् नहीं किया जा सकता था जब तक कि वे अपना निश्चित लगान सरकार को देते रहें।
2. जमींदार भूमि के मालिक होने के कारण भूमि को बेच या खरीद सकते थे।
3. जमींदारों से लगान हमेशा के लिए निश्चित कर दिया गया।

ब्रिटिश आर्थिक व्यवस्था ने सामाजिक व जातीय संबंधों को तोड़ डाला और नए सामाजिक एवं आर्थिक वर्गों को जन्म दिया। इस नई व्यवस्था के परिणामस्वरूप जो वर्ग उभरकर सामने आए वे इस प्रकार थेः (i) जमींदार वर्ग (मुगलकालीन); (ii) ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाया गया नवनिर्मित जमींदार वर्ग; (iii) गैर–काश्तकार जमींदार वर्ग (जो शहरों में रहता था); (iv) पट्टेदार वर्ग; आदि थे। जमींदार वर्ग पूँजीवादी कंपनी–सरकार की कृषि नीति का सीधा परिणाम था।[6]

भूमि के पूर्व निर्धारित लगान में, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, सरकार का भाग 89% निर्धारित किया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि जमींदार के पास राजस्व संग्रह से सम्बद्ध कामों के लिए केवल 11% ही बाकी रहा।[7] इस बन्दोवस्त ने भारत में एक ऐसा वर्ग पैदा किया जो प्रत्येक स्थिति में कम्पनी को राजनीतिक लाभ देने लगा। सिपाही विद्रोह के समय बंगाल के जमींदारों ने अंग्रेजों का ही साथ दिया था। इस बन्दोवस्त ने जमींदारों की सहायता से अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ों को मजबूत करने में मदद की। इस व्यवस्था ने जमींदारों की स्थिति को भी सुरक्षित कर दिया। उसकी स्थिति पर तब तक कोई आँच आनेवाली नहीं थी जबतक वह कम्पनी को लगान देते रहनेवाला था।[8]

1793 का स्थायी बन्दोवस्त जमींदारों के साथ किया गया। बंगाल, बिहार और उड़ीसा की एक–एक ईंच जमीन अब एक जमींदारी का हिस्सा बन गई, और जमींदार को उस पर तय मालगुजारी देनी थी।[9] जमींदारों को एक निश्चित तारीख तक तय मालगुजारी देनी पड़ती थी (तथाकथित 'सूर्यास्त' का नियम), और न दे पाने पर जमींदारी बिक जाती थी। अक्सर उनके लिए लगान वसूल करना भी कठिन होता था, क्योंकि माँगे बहुत भारी थीं और प्रकृति का कोई भरोसा नहीं था। 1794 और 1807 के बीच बंगाल और बिहार में लगभग 41 प्रतिशत मालगुजारी देनेवाली जमीनें नीलामी में बिकी; उड़ीसा में 1804 और 1818 के बीच नीलामी के कारण 51.1 प्रतिशत मूल जमींदार तबाह हो गए।[10]

लार्ड विलियम बेंटिक ने स्थायी प्रबंध के लाभों के सम्बन्ध में अपने एक भाषण में इस बन्दोवस्त प्रणाली को भारत के भविष्य में होनेवाली क्रांति को रोकने में एक कारगर हथियार कहा।[11] 1925 ई० में जब बंगाल लैण्ड ऑनर्स एसोसिएशन के अध्यक्ष ने वाइसराय को जो अभिनन्दन–पत्र दिया था, उसमें स्पष्ट लिखा हुआ था : "जमींदार लोग सरकार का पूरा–पूरा समर्थन करेंगे और पूरी निष्ठा के साथ सरकार की सहायता करेंगे।"[12] 1938 ई० में ऑल इण्डिया लैण्ड होल्डर्स कॉन्फ्रेंस का जब आयोजन किया गया जो जमींदारों का मिला–जुला संगठन था, उसमें मेमनसिंह के महाराजा के अध्यक्षीय भाषण में कहा गया–"यदि हमें एक वर्ग के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखना है तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम सरकार का हाथ मजबूत करें।"[13]

बुकानन ने अपने विवरण में जमींदारी प्रथा के अधीन दस्तकारों का जिक्र करते हैं तब यह जरूर बताते हैं कि ग्रामीण दस्तकारों का समूह जमींदारी प्रथा का नियमित हिस्सा होता था।[14]

स्थायी बन्दोवस्त ने एक ऐसे वर्ग को जन्म दिया था जो स्वयं तो अकर्मण्य एवं अनुत्पादक था परन्तु राज्य के प्रति विश्वास–पात्र तथा स्वामी–भक्त था।[15] जमींदार सामान्यतः कृषि कार्यों में स्वयं योगदान नहीं देते थे तथा रियासत का प्रबन्ध साधारणतया क्रूर–हृदय प्रतिनिधियों के हाथों में छोड़कर विलासिता में लिप्त रहते थे।[16] डॉ० ह्वेरा आन्स्टे के अनुसार ये जमींदार जोंक के समान थे जिनका कृषि विकास से कोई प्रयोजन नहीं था।[17]

अंग्रेजी कम्पनी के द्वारा स्थायी बन्दोवस्त लागू किये जाने के उपरान्त भूमि का स्थायित्व किसानों के हाथ से निकलकर जमींदारों के हाथों में आ गया। बिहार में दरभंगा राज, बेतिया राज, हथुआ राज, छोटानागपुर राज, बग्घी राज, डुमराँव राज तथा पातेपुर राज जैसे कई राज को जमींदार का दर्जा दिया गया और उनके साथ राजस्व वसूलने का अनुबंध किया गया।[18]

जमींदार भी दो तरह के थे

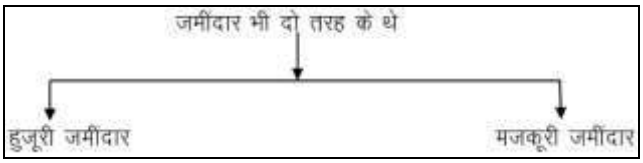

हुजूरी जमींदार सीधे सरकार को लगान देते थे। मजकूरी मूल जमींदार के अधीन थे और वे जमींदार को लगान देते थे। भविष्य में जब कृषि की उन्नति हुई तो जमींदारों की आय तो बढ़ गई किन्तु सरकारी लगान में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं हुई। स्थायी प्रबंध के अंतर्गत सरकारी मालगुजारी संपूर्ण बंगाल के लिए केवल पौने चार करोड़ रुपये वार्षिक निश्चित की गयी थी जबकि उस समय किसानों से जमींदार 13 करोड़ रुपये वार्षिक लगान वसूल करते थे।[19]

ब्रिटिश शासन में उत्पन्न हुई जमींदारी व्यवस्था कृषकों के निर्मम शोषण का दोहरा साधन बन गई–एक ओर लगान के रूप में और दूसरी ओर ऋण के ऊपर दिये जानेवाले ब्याज के रूप में।[20] इस व्यवस्था ने किसानों के साथ सौदा किया, कोई समझौता नहीं। किसानों की जमींदारों के पर छोड़ दिया गया। यह भी अन्यायपूर्ण था। बैवरिज ने लिखा है कि "केवल जमींदारों के

साथ समझौता करके किसानों के अधिकारों को भूलाकर एक महान भूल और अन्याय किया गया। कालान्तर में जमींदारों ने अपने अधिकारों का दुरूपयोग करना प्रारम्भ किया। वे सरकार और किसान को ठगने लगे और सरकार उनपर नियन्त्रण रखने में असमर्थ हो गई।"[21]

स्थायी व्यवस्था से जमींदार वर्ग लाभान्वित तो हुआ, परन्तु इस व्यवस्था के लागू होने के आरंभिक दशकों में उसे अनेक समस्याओं का भी सामना करना पड़ा। इनमें सबसे बड़ी समस्या थी निश्चित अवधि पर लगान जमा करने की। अनेक जमींदार निश्चित समय पर लगान की राशि जमा नहीं करवा सके। अतः, कंपनी ने उनकी जमींदारियाँ नीलाम कर दी। जमींदारों द्वारा समय पर लगान नहीं जमा करने के अनेक कारण थे–(i) कंपनी द्वारा जमींदारियों पर निर्धारित लगान की राशि बहुत ऊँची रखी गई। इसके पीछे यह तर्क दिया गया कि अगले वर्षों में कृषि में विकास और उत्पादन में जो वृद्धि होगी उसका लाभ कंपनी को भी मिलेगा। आमदनी बढ़ने से धीरे–धीरे जमींदारों पर भी आर्थिक भार में कमी होगी। ;पपद्ध जिस समय 1790 के दशक में राजस्व की राशि नियत की गई थी उस समय कृषि उत्पादों का मूल्य कम था। अतः, किसान लगान की राशि समय पर जमींदार को और जमींदार कंपनी को नहीं दे पाते थे। ;पपपद्ध लगान तय करते समय अप्रत्याशित घटनाओं–सूखा, बाढ़ इत्यादि को ध्यान में नहीं रखा गया। खेती उजड़ जाने या उपज नहीं होने पर राहत की कोई व्यवस्था नहीं थी। जमींदार को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी लगान चुकाना आवश्यक था। (iv) समय में भी कोई रियायत नहीं दी जाती थी।

इतना ही नहीं, सूर्यास्त कानून के अनुसार, यदि जमींदार निश्चित तिथि को सूर्यास्त होने तक राजस्व की राशि कोष में जमा नहीं करवाता था तो उसकी जमींदारी नीलाम कर दी जाती थी। वहीं लगान की ऊँची दर के कारण तथा फसल खराब होने पर उचित कीमत नहीं मिलने से किसान जान–बूझकर जमींदार को समय पर लगान की राशि नहीं देते थे। जोतदार और मंडल बहुधा किसानों को लगान नहीं देने के लिए उकसाते रहते थे। इससे जमींदार की परेशानी बढ़ जाती थी। उसके पास न्यायालय की शरण लेने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था; परन्तु न्यायिक प्रक्रिया बहुत लम्बी होती थी। एक अनुमान के अनुसार, 1798 ई० में सिर्फ वर्द्धमान जिला में बकाया लगान के भुगतान से संबंधित 30,000 मामले लंबित थे। एक ओर ब्रिटिश सरकार ने जमींदारों को ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया, परन्तु दूसरी ओर उसने जमींदारों पर अंकुश भी लगा दिया। उनकी सैनिक टुकड़ियों को भंग कर दिया गया। सीमाशुल्क वसूलने का अधिकार समाप्त कर दिया गया। जमींदारी कचहरियों को कलक्टरों के अधीन कर दिया गया। जमींदार न तो स्थानीय स्तर पर न्याय कर सकते थे और न अपराधियों के विरुद्ध पुलिस कार्रवाई। कलक्टर का दफ्तर सत्ता का केन्द्र बन गया। लगान नहीं चुकाने पर कलक्टर जमींदार के विरुद्ध तत्काल कार्रवाई करते थे। एक जमींदार जब समय पर लगान नहीं चुका सका तो एक कंपनी के अधिकारी को उस जमींदारी में स्पष्ट आदेश के साथ भेजा गया कि "जिले का पूरा कार्यभार अपने हाथ में ले लो और राजा तथा उसके अधिकारियों के सम्पूर्ण प्रभाव और प्राधिकार को खत्म कर देने के लिए सर्वाधिक प्रभावशाली कदम उठाओ।" ऐसी परिस्थिति में जमींदार निःसहाय बन गये।

18वीं शताब्दी के अंतिम चरण में एक ओर बंगाल के ग्राम्य जीवन में जहाँ जमींदारों का प्रभाव घटता जा रहा था, उनकी आर्थिक स्थिति में लगातार गिरावट आ रही थी वहीं धनी किसानों के एक वर्ग का उदय हो रहा था। इसी समय फ्रांसिस हैमिल्टन बुकानन भारत आया था। यद्यपि वह बंगाल चिकित्सा सेवा में कार्यरत था (1794–1815) तथापि ब्रिटिश सरकार ने उसे "ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार क्षेत्र में आनेवाली भूमि" का व्यापक सर्वेक्षण करने का दायित्व सौंपा। बुकानन ने सर्वेक्षण का काम पूरी तत्परता और लगन से किया। उसे सर्वेक्षण के दिशा–निर्देश स्पष्ट रूप में दिये गये थे, जिनका उसने पालन किया। बुकानन की रिपोर्ट यद्यपि ऐतिहासिक अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण स्त्रोत है, परन्तु इसका उपयोग सावधानीपूर्वक करने की आवश्यकता है। जमींदारों ने अपनी जमीन को बिकने से बचाने के लिए कई नीतियाँ अपनाई। वर्द्धमान के राजा ने अपनी जमींदारी का कुछ भाग अपनी माता के नाम हस्तांतरित कर दिया, क्योंकि कंपनी स्त्रियों के अधिकारवाली सम्पत्ति पर दावा नहीं करती थी। फर्जी बिक्री द्वारा जमींदारों ने भू–सम्पदा को अपने नियंत्रण में बनाये रखने की रणनीति बनाई। यह सोची–समझी नीति थी। जान–बूझकर कम्पनी के कोष में राजस्व की राशि जमा नहीं की गई। इससे बकाया की रकम बढ़ते–बढ़ते नीलामी की नौबत आ गई। नीलामी के वक्त जमींदार के अपने कारिंदे और अन्य लोगों ने सम्पत्ति की ऊँची और सबसे अधिक बोली लगाकर सम्पत्ति को अपने नाम करवा लिया, परन्तु नीलामी की राशि चुकाने से इन्कार कर दिया। अतः इसकी पुनः नीलामी की गई। इस बार भी पहले जैसी ही प्रक्रिया दुहराई गई। बार–बार ऐसा होने पर कंपनी अंततः उस जमींदार को ही कम मूल्य पर महाल बेचने को बाध्य हो गई। इससे जमीन पर जमींदार का अधिकार पूर्ववत बना रहा और बकाया राजस्व का भुगतान भी उसे नहीं करना पड़ा। ऐसी बेनामी खरीददारियाँ बंगाल में आम हो गईं।

एक अध्ययन के मुताबिक 1793–1801 में वर्द्धमान सहित बंगाल की चार बड़ी जमींदारियों ने बड़ी संख्या में बेनामी खरीददारियाँ कीं। जमींदारों ने अपने लठियलों की सहायता से नये बाहरी खरीददार को महाल में प्रवेश ही नहीं करने दिया। ग्रामीण व्यवस्था पर जमींदार का प्रभुत्व बना रहा, लेकिन 1930 ई० की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी का जमींदारों पर घातक प्रभाव पड़ा। अनेक जमींदार समाप्त हो गये। राजशाही की रानी भवानी के साथ दुलाल राय और अमृत सिंह, पूर्णिया जागीर के विरुद्ध हुजुरीमल और मदन दत्त सजवालों ने बड़ा दुर्व्यवहार किया। इस व्यवस्था से कम्पनी को राजनीतिक लाभ भी मिले। जमींदार भूमि के स्वामी बना दिये गये थे। साथ ही जमींदारों की स्थिति को भी सुरक्षित कर दिया। उसकी स्थिति पर तब तक कोई आँच आनेवाली नहीं थी जबतक वह कम्पनी को लगान देते रहनेवाला था।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि स्थायी भू–व्यवस्था के बदले दीर्घकालिक भू–व्यवस्था से लाभ तो प्राप्त हो जाते किन्तु उसके दोषों का निराकरण हो जाता। इस प्रकार कालान्तर में सरकार को भूमि की अनर्जित वृद्धि का एक भाग बढ़े हुए राजस्व के रूप में प्राप्त हो जाता और जमींदार भी कृषक पर अमानुषिक अत्याचार न कर पाते। लगान की एक निश्चित रकम सरकार को देने के पश्चात् भी बहुत बड़ी राशि जमींदारों को प्राप्त होने लगी।

संदर्भ

1. राय, डॉ० सत्या एम०, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2011, पृ० सं०–44
2. पाण्डेय, प्रो० श्रीधर, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2017, पृ० सं०–237
3. ग्रोवर, बी०एल०, अलका मेहता, यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, एस० चन्द, नई दिल्ली, 2010, पृ० सं०–160
4. सिन्हा, मनोज, समकालीन भारत एक परिचय, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2012, पृ० सं०–08
5. राय, डॉ० सत्या एम०, पूर्वोक्त, पृ० सं०–46
6. वही, पृ० सं०–45
7. आर० रिकर्ड्स, इण्डिया और फैक्ट्स, खण्ड–1, पृ० सं०–360
8. पाण्डेय, धनपति, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास,

मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2017, पृ० सं०–31
9. बंधोपाध्याय, शेखर, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, हैदराबाद, 2019, पृ० सं०–84
10. चौधुरी, बी०बी०, द लैण्ड मार्केट इन ईस्टर्न इण्डिया (1793–1940), भाग–1, दि इण्डियन इकोनॉमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू 12(1) : 1–42, 1975, पृ० सं० 5–6
11. कीथ, आर्थर बेरीडेल, स्पीचेज एण्ड डकुमेंट्स आन इण्डियन पालिसी (1750–1921), खण्ड–1, ऑक्सफोर्ड यूनिवरसिटी प्रेस, लंदन, 1922, पृ० सं०–215
12. 1925 में बंगाल लैण्ड ऑनर एसोसिएशन के अध्यक्ष द्वारा वाइसराय को दिया गया अभिनन्दन पत्र।
13. 1938 प्रथम ऑल इण्डिया लैण्ड होल्डर्स काफ्रेंस में अध्यक्ष पद से दिया गया मेमनसिंह के महाराजा का भाषण।
14. बुकानन, फ्रांसिस, एन एकाउन्ट ऑफ दि डिस्ट्रीक्ट ऑफ भागलपुर इन 1810–1811, पटना लॉ प्रेस, पटना, 1939, पृ० सं०–60
15. पाण्डेय, प्रो० श्रीधर, पूर्वोक्त, पृ० सं०–240
16. रिपोर्ट ऑफ दि लैण्ड रेवन्यू कमिशन (बंगाल)
17. ऐंस्टे, वेरा, दि इकोनॉमिक डेवलपमेंट ऑफ इण्डिया, लॉन्गमैन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी, लंदन, 1946, पृ० सं०–99
18. दास, प्रमोदानन्द, कुमार अमरेन्द्र, बिहार इतिहास एवं संस्कृति, लूसेन्ट, पटना, 2008, पृ० सं०–186
19. राय, कौलेश्वर, बिहार का इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, 2018, पृ० सं०–219
20. शुक्ल, आर०एल०, आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1987, पृ० सं०–47
21. रॉय चौधरी, तपन, धर्मा कुमार, इरफान हबीब, मेघनाद देसाई, दि कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वॉल्यूम–2, कैम्ब्रिज यूनिवरसिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1983, पृ० सं०–631